स्वाधीनोत्तर किसान आन्दोलन का स्वरूप

अनुज कुमार

शोधार्थी स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, ल0 ना0 मि0 विश्वविद्यालय, दरभंगा–846004

प्रस्तावना :

भारत में किसान आन्दोलन का लगभग 200 वर्षों का इतिहास है। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल का संथाल एवं नील विद्रोह तथा मद्रास एवं पंजाब में किसान आन्दोलन के उदाहरण विख्यात है। किन्तु अप्रैल, 1917 में नील कृषकों द्वारा बिहार के चम्पारण जिले में गाँधी जी के नेतृत्व में चलाया गया किसान संघर्ष देश का राजनीतिक दृष्टि से पहला संगठित आन्दोलन था।

वस्तुतः भारत का किसान आन्दोलन भारत में ब्रिटिश राज की नीतियों और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन दोनों से अभिन्न रूप से जुड़े रहे।[1] राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष और भारतीय किसान आन्दोलनों में स्पष्ट परस्परावलम्बन था। दोनों एक–दूसरे के प्रेरक और पूरक थे तथा आरंभिक आन्दोलन के संदर्भ में ब्रिटिश राज की दोहरी नीति दिखाई पड़ती थी। एक ओर कुछ मामलों में सरकारी अधिकारी किसानों की शिकायतें सुनकर उन्हें दूर करने का प्रयास करते थे, वहीं दूसरी ओर किसान नेताओं को झूठे मामलों में गिरफ्तार करना और विभिन्न प्रकार से तालुकेदारों की किसान आन्दोलनों को कुचलने की चेष्टा को मजबूत करना भी किया जाता था।[2]

1937 के प्रारंभ में देश के बहुसंख्यक राज्यों में कांग्रेस सरकारों के गठन से किसान आन्दोलन का एक नया दौर शुरू हुआ। उस समय देश का पूरा राजनीतिक माहौल बदला हुआ था। नागरिक स्वतंत्रताएँ बढ़ गयी थी। लगता था हमारे अपने लोग सत्ता में हैं, इस एहसास से स्वतंत्रता का एक नया आयाम पैदा हुआ था। किसानों में यह अवधारणा थी कि कांग्रेस सरकार जनता की भलाई के लिए कुछ काम करेगी। इस संदर्भ में अगर देखा जाए तो 1937–39 यानि तीन वर्ष किसान आन्दोलन के उत्कर्ष के वर्ष थे। परिणामतः कांग्रेस सरकार कुछ ठोस कदम भी उठाये, ऋणों में राहत देने के लिए व मन्दी के दौरान जो किसान भूमिहीन हो गये थे, उन्हें उनकी जमीन वापस लौटाने के लिए, काश्तकरों की सुरक्षा के लिए और इससे किसानों को प्रेरणा मिली कि वे प्रस्तावित कानूनों के पक्ष में माहौल बनाएँ, ताकि जरूरत होने पर उनका रूप बदलने की अपील करें।

किसानों में जागरूकता पैदा करने का मुख्य माध्यम था – थाना, तालुका, जिला और प्रान्त के स्तर पर किसान सभाएँ सम्मेलन आयोजित करना। सम्मेलन के पूर्व कार्यकर्त्ता गाँव–गाँव में घूमकर छोटी–छोटी बैठकें करते थे, कांग्रेस और किसान सभा के सदस्य भी बनाते थे, नगद या अनाज के रूप में चन्दा भी एकत्रित करते और किसानों को ज्यादा से ज्यादा संख्या में सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित करते रहे। सम्मेलन के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते थे, जिसका लक्ष्य किसान आन्दोलन के उद्देश्यों को मार्मिक ढ़ंग से जनता के बीच रखना होता था। आसपास के क्षेत्रों में इन सब चीजों का जबरदस्त असर पड़ता था और सभा या संगोष्ठी में भाग लेने वाले किसान अपनी ताकत की नयी चेतना और अपनी स्थितियों की बेहतर अनुभव के साथ अपने घर लौटते थे।[3]

स्वाधीनता भारत में किसान आन्दोलन :

आजादी प्राप्त होने के तत्काल बाद देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलय और राजाओं तथा जमींदारों द्वारा साम्राज्यवादी खेमा छोड़कर कांग्रेस में बड़े पैमाने पर प्रवेश ने आजादी के बाद के राज्यों पर किसानों के दबाव और नियंत्रण की शंकाओं को नष्ट कर दिया। सन् 1947 से 1957 ई0 तक के दौरान प्रायः सभी राज्यों में भूमि सुधार संबंधी नये कानूनों का निर्माण तथा कुछ हद तक कार्यान्वयन किया गया। इससे किसानों के बीच एक नये भू–स्वामी का राज्य के संरक्षण में उदय हुआ। फलतः किसान आन्दोलन में कुछ नये अन्तर्विरोध भी उत्पन्न हो गये।

स्वाधीनता के तत्काल बाद के वर्षों में समाजवादियों द्वारा गठित हिन्द किसान पंचायत (1950) के प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में राम मनोहर लोहिया ने नये परिवेश में किसान आन्दोलन के लिए निम्नलिखित छः भागों को स्वाधीनोत्तर किसान आन्दोलन के लक्ष्य के रूप में प्रतिपादित किया।[4]

1. जोतने वाले को तुरन्त सरकारी आदेश द्वारा जमीन दी जाए।
2. परती जमीन के लिए भूमि सेना बनाई जाय।
3. छोटी मशीनों द्वारा औद्योगीकरण किया जाय।
4. जमीन का पुनर्वितरण हो और प्रत्येक परिवार को 20 बीघा जमीन और एक ग्राम मिले।
5. खेतिहर वस्तुओं और औद्योगिक की कीमत में सामंजस्य हो।
6. चौखम्भा राज्य की स्थापना की जाय।

उदय मेहता के अनुसार आजादी के बाद के किसान आन्दोलनों में कांग्रेस सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्र की श्रमजीवी जनता की मुख्य समस्याओं के समाधान में विफलता के कारण एक निश्चित वामपंथी झुकाव रहता है।[5] आजादी के बाद भूमि सुधार कार्यक्रमों तथा सामुदायिक विकास योजनाओं से बड़ी जमीन वाले और मुनाफा की खेती कर पाने वाले किसानों को अनेक लाभ मिले, किन्तु इन नीतियों से छोटी जोत के किसानों (सवा छः एकड़ से कम) और खेतिहर श्रमिकों को विशेष राहत न मिल सकी।

यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि भारतीय किसान आन्दोलन के संगठनकर्त्ताओं और कार्यकर्त्ताओं के दृष्टिकोण में इन राजनीतिक चिन्तकों द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण का केन्द्रिय महत्व रहा है। भारतीय किसान आन्दोलन के संदर्भ में राष्ट्रवादी, कम्युनिष्ट और समाजवादी सिद्धान्तों से प्रभावित व्यक्तियों की मुख्य भूमिका रही है। किसान सभा जैसे संगठनों की स्थापना से लेकर चम्पारण, बारदोली, खेड़ा, अवध, तेलंगाना और बंगाल में किसान संघर्ष चलाने तक की सभी घटनाओं में इन तीनों प्रवृतियों का मिला–जुला रूप दिखाई पड़ता है। कई अर्थों में अगर देखा जाए तो आजादी की लड़ाई के दौरान किसानों के बीच विकसित वैचारिक और राजनीतिक संस्कृति ने ही स्वाधीन भारतीय किसान आन्दोलन का भी मार्गदर्शन प्रारंभ में किया है।

गाँधी के अनुसार हिन्दुस्तान का अर्थ मुट्ठीभर राजागण न होकर वे करोड़ों किसान है, जिनके सहारे राजा और अन्य सभी जी रहे हैं। किसान किसी के तलवार बल के बस में न तो कभी हुए हैं और न होंगे। वे तलवार चलाना नहीं जानते, न किसी की तलवार से वे डरते हैं। वे मौत को हमेशा अपना तकिया बनाकर सोने वाली महान् प्रजा हैं। उन्होंने मौत का डर छोड़ दिया है, इसलिए सबका डर छोड़ दिया है।[6] गाँधी के किसान और गाँव संबंधी यह विचार जीवनपर्यन्त बने रहे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व संभालने के बाद गाँधी ने भारतीय किसानों की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं के बारे में भी क्रमशः एक दृष्टिकोण का प्रवर्त्तन किया। गाँधी के अनुसार भारतीय किसानों की समस्याओं के मूल में विदेशी पराधीनता और पश्चिमी सभ्यता अभिमुख औद्योगिकरण का दबाव दोनों ही है। अतः भारतीय किसान आन्दोलन का लक्ष्य स्वाबलंबित गाँव की रचना और स्वदेशी की भावना के आधार पर राजनीतिक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

होना चाहिए। उनकी दृष्टि में किसानों और जमींदारों के बीच भूमि के स्वामित्व के प्रश्न पर संघर्ष से ज्यादा जरूरी लड़ाई विदेशी शासन द्वारा वसूले जा रहे विभिन्न (टैक्सों) करों के संदर्भ में सविनय अवज्ञा और असहयोग का आन्दोलन किसानों, गाँवों और समूचे देश तीनों के लिए ही ज्यादे महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी होगा।[7]

गाँधी द्वारा प्रतिपादित किसान आन्दोलन संबंधी वैचारिक में राज्य और सम्पति दोनों से जुड़े प्रश्नों के प्रति स्पष्ट विमुखता अथवा उदासीनता देखी जा सकती है, अर्थात् किसान आन्दोलन का लक्ष्य ग्रामीण समुदाय की शक्ति की पुनः स्थापना और भारतीय भावों का स्वदेशी तथा सत्याग्रह के आधार पर स्वाबलम्बी विकास माना गया। इस दृष्टि के परिष्कार में चम्पारण, चौरीचौरा, बारदोली, खेड़ा, हरिजन समस्या तथा 1942 की क्रांति के अनुभवों ने भी योगदान किया गाँधी की किसान आन्दोलन संबंधी मान्यताएँ लगातार विकसित भी होती रही है।[8]

भारत में संगठित किसान आन्दोलन के जन्मतदाता स्वामी सहजानन्द वैचारिक दृष्टि से गाँधीवादी, कम्युनिष्ट और समाजवादी तीनों ही समूहों से अलग दृष्टि और दिशा के प्रवर्त्तक थे। उनकी विचाराधारा भारतीय स्वाधीनता संग्राम और भारतीय किसान आन्दोलन के ठोस अनुभवों के आधार पर विकसित हुई और इस प्रक्रिया में उनको बिहार के किसान नेताओं के साथ–साथ मद्रास प्रेसीडेंसी क्षेत्र के श्री एन0 जी0 रंगा और बम्बई प्रान्त के किसान नेता श्री इन्दुलाल यज्ञिक का घनिष्ठ सहयोग मिलता रहा । अपनी आत्मकथा 'मेरा जीवन संघर्ष' में स्वामी सहजानन्द ने अपने विचार और कार्यों को स्वयं कांग्रेस प्रवेश, सुधारवादी किसान सभा और क्रांतिकारी भावना से निर्देशित किसान आन्दोलन के तीन खण्डों में बाँटा।[9]

रजनीपाम दत्त द्वारा बहुचर्चित पुस्तक 'इण्डिया टू डे' लन्दन 1960 में प्रकाशित किया गया था। रजनीपाम दत्त के अनुसार भारतीय किसान देश की आजादी की लड़ाई के संदर्भ में कांग्रेस के कार्यक्रमों से अपनी समस्याओं के संदर्भ में ही जुड़ा था। अपनी समस्याओं की समाधान की प्रक्रिया से जुड़ा था। वर्ग संघर्ष के सिद्धांत के अनुकूल पाम दत्त की यह मान्यता है कि भारत के किसानों के विदेशी शासन, भूस्वामी जमींदार वर्ग, महाजन और सुदखोर साहूकार वर्ग के तिहरे बोझ से राहत पाने के लिए प्रथम विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न आर्थिक संकट के दौरान गाँव–गाँव में स्वतः स्फूर्त समितियों का गठन किया गया था।[10] किसानों की इन गाँवों समितियों के आधार पर जिला स्तरीय संगठन खड़े हुए। ऐसी अनेक जिला इकाईयों ने आरंभिक प्रान्तीय संगठनों की रचना की। किसान आन्दोलन के इस अद्भुत विस्तार ने भारतीय स्वराज्य को भी एक नयी परिभाषा प्रदान की। जिसके अनुसार ब्रिटिश राज से देश की स्वाधीनता का अर्थ किसान मजदूरों का लोकतांत्रिक राज स्वीकारा जाने लगा। इसी कारण भारतीय आजादी के प्रारंभिक वर्षों में कम्युनिष्टों द्वारा किसानों से वर्ग संघर्ष को तेज करने के लिए सशक्त विद्रोह का मार्ग अपनाने की अपील का तेलंगाना और पश्चिमी बंगाल जैसे कुछ क्षेत्रों में प्रभाव पड़ा।[11]

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इस संदर्भ में एंगिल्स महोदय ने ठीक कहा है कि ऐसे देश में जब तक किसानों में काफी काम नहीं किया जाएगा और उनका विश्वास नहीं प्राप्त किया जाएगा, कोई भी क्रांति नहीं कर सकते। कौन कहता है कि हमारे कम्युनिष्ट भाईयों का किसानों पर अच्छा प्रभाव है ? जितने प्रान्तों में किसान सभा का ठोस काम है और उनमें कितने कम्युनिष्ट कार्यकर्त्ता है। वह तो ऊँगली पर गिने जा सकते हैं। मजदूरों में भी काफी काम नहीं हुआ है। रेलवे के मजदूर अब भी सुधारवादियों के प्रभाव में है। इन आवश्यक क्षेत्रों की उपेक्षा की गयी।

भारतीय समाज व्यवस्था में किसानों का समुदाय संख्या और महत्व दोनों ही दृष्टियों से सर्वोपरि है। 20वीं शताब्दी के दौरान किसानों का आन्दोलन भारतीय समाज और राजनीति में सर्वाधिक महत्व की प्रक्रिया रही है। किसानों के आन्दोलनों का अध्ययन समाजशास्त्र की उस शाखा का किया जा सकता है, जिसमें सामाजिक आन्दोलनों के उद्भव, उद्देश्यों, वैचारिकी संगठन, रणनीति एवं उपलब्धियों के वैज्ञानिक कार्य कारण संबंधों का विश्लेषण किया जाता है।[12] इस प्रकार किसान आन्दोलन की मूलतः सामाजिक सत्ता और शक्ति के संदर्भ में एक सामाजिक तथ्य के रूप में देखना अनिवार्य आवश्यक है।

भारतीय किसान आन्दोलन के संदर्भ में डॉ0 डी0 एन0 धनागरे की पुस्तक ''पीजेण्ट मूवमेण्ट इन इण्डिया' (1920–50) एक महत्वपूर्ण समाज वैज्ञानिक अध्ययन है, उनकी यह पुस्तक (रचना) स्वाधीनता संग्राम के आखिरी तीन दशकों की परिस्थितियों का चुने हुए क्षेत्रीय उदाहरणों से एक वर्ग आधारित चित्र प्रस्तुत करती है। इस विश्लेषण में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों और स्वाधीन भारत के आरंभिक वर्षों के किसान आन्दोलनों का अन्तर संबंध भी दर्शाया गया है। इस प्रकार डॉ0 डी0 एन0 धनागेर का योगदान भारतीय किसान आन्दोलन के स्वाधीनता के बाद की दिशा की पृष्ठभूमि को समझने के लिए एक उपयोगी विश्लेषण है। धनागरे का अध्ययन भारतीय किसान आन्दोलन के संदर्भ में हम्जा अल्वी और ऐरिक उल्फ के मध्यम किसान सिद्धांत की पुष्टि नहीं करता । इस अध्ययन के अनुसार भारत का मध्यम किसान विद्रोहों और सशस्त्र संधर्ष के बजाय 'उदारपंथी एवं सुधारवादी' आन्दोलनों और गैर महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर ज्यादा उन्मुख रहा है।[13]

निष्कर्षतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि किसी सामाजिक आन्दोलन के समाजशास्त्रीय अध्ययन में कौन सी अध्ययन पद्धति सर्वाधिक उपयुक्त होगी, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न कहा जा सकता है, किन्तु पिछले पाँच दशकों में विश्व समाज विज्ञान के स्तर पर किसान आन्दोलनों के महत्वपूर्ण अध्ययनों में से अधिकांश विश्लेषणों में ऐतिहासिक समाजशास्त्र की पद्धति का उपयोग एक मुख्य प्रवृति रही है। भारतीय किसान आन्दोलन के बदलते आधारों के समाज वैज्ञानिक अध्ययन की आयोजना ऐतिहासिक समाजशास्त्र की पद्धति के अनुसार किसी सामाजिक संदर्भ विश्लेषण में उसके समकालीन परिवेश और अतीत दोनों का ही समान महत्व होता है।

स्रोत संदर्भ सूची :–

1. रविवार, कलकत्ता, **आनन्द बाजार पत्रिका** प्रकाशन, दिसम्बर, 1986
2. उपर्युक्त
3. स्वामी सहजानन्द सरस्वती, **मेरा जीवन संघर्ष**, पटना, अध्यक्ष श्री सीतारामाजम, विहटा, पृ0–504
4. राम मनोहर लोहिया, **भारत का किसान,** सामयिक वार्त्ता, पटना, लोहानीपुर, 1979
5. Desai, **Peasant Struggles in India,** Bombay, Oxford University Press, 1979, Page (743 - 50)
6. एम0 के0 गाँधी, **हिन्द स्वराज,** वाराणसी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, 1983, पृ0–74
7. Nirmal Kumar Bose, **Studies in Gandhism,** Calcutta, Mirit Publisher, 1962.
8. Luie Fisher, **Mahatma Gandhi,** New York, 1948
9. उपर्युक्त
10. R. Palme Dutta, **India Today,** Bombay, Peoples Publishing House, 1949, Page 276-79.
11. नरेन्द्र देव, आचार्य, **राष्ट्रीय और समाजवाद,** वाराणसी, ज्ञान मण्डल प्रकाशन, 1947, पृ0–294–98
12. R. Joseph Gusfield, **Protest-Reform and Revolt,** A Reader in Social Movement, New York, John Wiley, 1970.
13. Barigton Moore, **Social Origin of Democracy and Dictatorship,** New York, Beacon Press, 1967.